# माँ गंगा की जीवनदायिनी संस्कृति

स्वामिनी प्रमानन्दा

नाम रूप का मूल आधार है।

'सत्तामीमांसा' के अनुसार जगत की सत्ता स्वतंत्रता से सिद्ध नहीं होती है। कोई भी पदार्थ अपनी सत्यता को सिद्ध नहीं कर सकता, द्रष्टा ही उसे सत्य सिद्ध करता है क्योंकि पदार्थ पारतंत्र्य होता है और जो पारतंत्र्य होता है उसकी अपनी अस्मिता नहीं होती है द्रष्टा ही उसकी अस्मिता को सिद्ध करता है।

जैसे कहा गया है, ''ज्ञानाधिना ज्ञेय सिद्धि।'' अर्थात् ज्ञान के अधीन ही ज्ञेय वस्तु की सिद्धि होती है। दृष्टा ही ज्ञाता है जो स्वत: सिद्ध है। इसलिए द्रष्टा सत्य है और ज्ञेय या दृश्य पदार्थ को मिथ्या कहा है।



इस तथ्य को हम उदाहरण से समझ सकते हैं कि जैसे यह आकाश नीला है, इस नीले आकाश का अस्तित्व तभी है जब उसका कोई ज्ञाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे घंटी की ध्वनि का भी तभी अनुभव किया जा सकता है जब उसे श्रवण इंद्रिय द्वारा ग्रहण किया जाता है। अर्थात् आकाश का नीला होना और घंटी की ध्वनि को एक ज्ञाता द्वारा ही अनुभव किया जाता है। उसी रूप में हम यह कह सकते हैं कि ज्ञान के लिए ज्ञाता अनिवार्य है। ज्ञेय की सत्ता को ज्ञाता के बिना स्वतंत्र रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। इसलिए जगत् के पदार्थों को मिथ्या कहा गया है।

वास्तव में ज्ञान की अनुभूति ज्ञाता की इंद्रियों की क्ष आधारित है। जैसे कोई एक विशेष ध्वनि कुत्तों को सुनाई देती है लेकिन यह मनुष्यों को सुनाई नहीं देती है इसका अभिप्राय यह है कि

इस तथ्य को हम उदाहरण से समझ सकते हैं कि जैसे यह आकाश नीला है, इस नीले आकाश का अस्तित्व तभी है जब उसका कोई ज्ञाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे घंटी की ध्वनि का भी तभी अनुभव किया जा सकता है जब उसे श्रवण इंद्रिय द्वारा ग्रहण किया जाता है। अर्थात् आकाश का नीला होना और घंटी की ध्वनि को एक ज्ञाता द्वारा ही अनुभव किया जाता है। उसी रूप में हम यह कह सकते हैं कि ज्ञान के लिए ज्ञाता अनिवार्य है। ज्ञेय की सत्ता को ज्ञाता के बिना स्वतंत्र रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। इसलिए जगत् के पदार्थों को मिथ्या कहा गया है।

वास्तव में ज्ञान की अनुभूति ज्ञाता की इंद्रियों की क्षमता पर आधारित है। जैसे कोई एक विशेष ध्वनि कुत्तों को सुनाई देती है लेकिन यह मनुष्यों को सुनाई नहीं देती है इसका अभिप्राय यह है कि पदार्थ अपने आप को सिद्ध नहीं कर सकता है, ज्ञाता की दृष्टि ही उसे सत्य सिद्ध करती है। वेदान्त की परंपरा में मिथ्या को परिभाषित करते कहा गया है - स्वकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे सती असद् भवेद् अर्थात् पदार्थ की अनुभूति में यह सत्य प्रकट नहीं होता है परंतु उस अनुभूति का कारण खोजने पर, उसका कारण ज्ञात होने पर, पदार्थ की सत्ता मिथ्यात्व में परिवर्तित हो जाती है।

मैं इस बात को पूर्णत: स्वीकार करती हूँ कि मैंने अपने जीवन में सूर्यदेव से सब कुछ प्राप्त किया है उन्हीं की अनंत कृपा ने मुझे इन वर्षों में जीवंत रखते हुए पोषित किया है।

इसी कारण अनादि काल से अनेकानेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं में सूर्यदेव जीवनदाता के रूप में पूजित रहे हैं। वे देवत्व के आदर्श, इस भौतिक जगत् के स्रोत एवं इस सृष्टि में जो



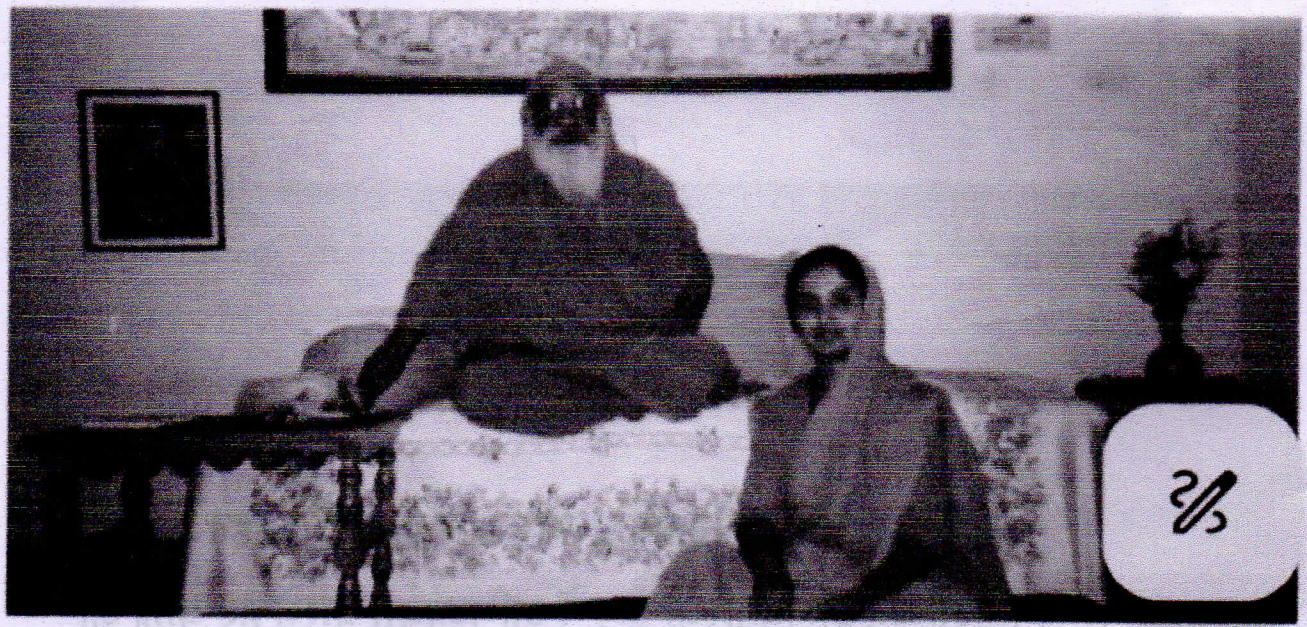

कछ है उसमें व्याप्त रहने वाले हैं और उन्हीं में सभी शक्तियां

कुछ है उसमें व्याप्त रहने वाले हैं और उन्हीं में सभी शक्तियां समाहित रहती हैं।

सूर्योपनिषद् का कहना है -

सूर्यआत्मा जगत: तस्थुषश्च
सूर्याद् वैखल्विमानि भूतानि जायन्ते।

"सूर्य देवता समस्त चराचर जगत् की अंतस्थ चेतना में स्थित है और वह जगत् उसी से प्रकाशित हैं। उन्ही से ही समस्त चराचर जगत् का उद्गम हुआ हैं।"

सूर्याद् भवन्ति भूतानि, सूर्येण पालितानि तु।
सूर्येलयं प्राप्नुवन्ति सूर्य: सोऽहमेव च:।

"सूर्य से ही सभी उत्पन्न होते हैं, उसी में स्थित रहते पोषण प्राप्त करते हैं उन्हीं में लय हो जाते हैं उस रूप में मैं ही सूर्य हूं, उससे भिन्न नहीं हूं।"



सूर्य वास्तव में अपने प्रकट स्वरूप में ईश्वर ही हैं। इनकी इन्हीं विशेषताओं को अलंकारिक रूप में अभिव्यक्त करते हुए कहा जा सकता है कि सूर्यदेव ईश्वर के प्रतीक हैं। इस प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों में सूर्य ही हैं जो अपने आप में परिपूर्ण और दाता है।

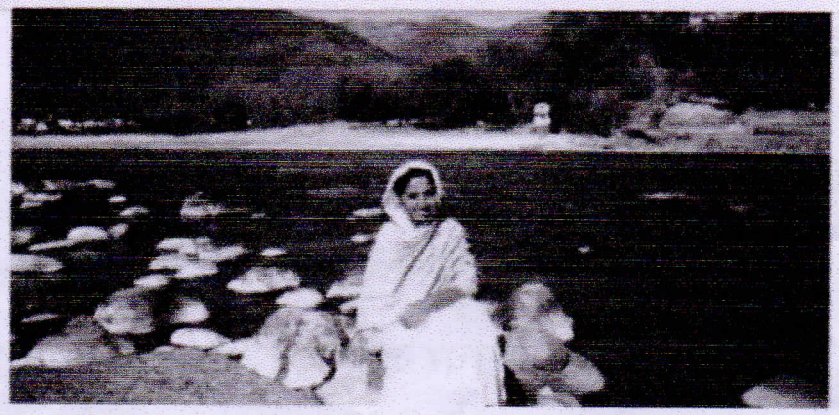

गंगा और मेरी युवा अवस्था

हिमालय के लिए मैंने सब कुछ, जिस पर मेरा विश्वास, मेरी निष्ठा, मेरा जीवन दर्शन, मेरे मित्र, मेरे गुरू, मेरी परंपरा आदि जिन सभी के साथ अब तक मैं जीवित रही थी, उन सभी को पीछे छोड़कर आ गयी।

जिस बहुमुखी और ऊर्जस्वी जीवन जिसे अब तक मैं मैदानों में जी रही थी उससे अलग होकर हिमालय आना बहुत सरल कार्य



नहीं था। क्या मैं उसके लिए तैयार थी ? इसी की चिंता बनी रही। मैं अपने इस अविस्मरणीय परिवर्तन को देखकर जड़वत् हो गयी थी। मैं यह भी नहीं जान पा रही थी कि इस भौतिक अस्तित्व को लेकर मैं इस एकान्त जीवन से क्या करने जा रही थी। मैं अपनी माँ गंगा के सानिध्य की तीव्र इच्छा लिए हिमालय की गोद में माँ गंगा के तट पर आ गयी। मैं यह जानती थी कि हजारों वर्षों से सत्य की खोज
वाले अनेक संत, राजा, ऋषि और अनगिनत लोग उत्तरका
अपने दृढ़ विश्वास और भक्ति के साथ आए तो माँ गंगा ने उनके तन-
मन को पवित्रता और निर्मलता प्रदान की थी।

परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने पर मेरी आंखों से खुशी के आंसू छलक रहे थे मेरे ये लवणीय अश्रु मेरे आँखों से बहकर मां गंगा के पवित्र जल से एकमेक हो रहे थे। मैंने अपनी मां के आंचल में उस वात्सल्य और प्रेम का अनुभव किया जिसका मैं चिरकाल से प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने अपनी अश्रुपूरित आंखों से उसकी ओर

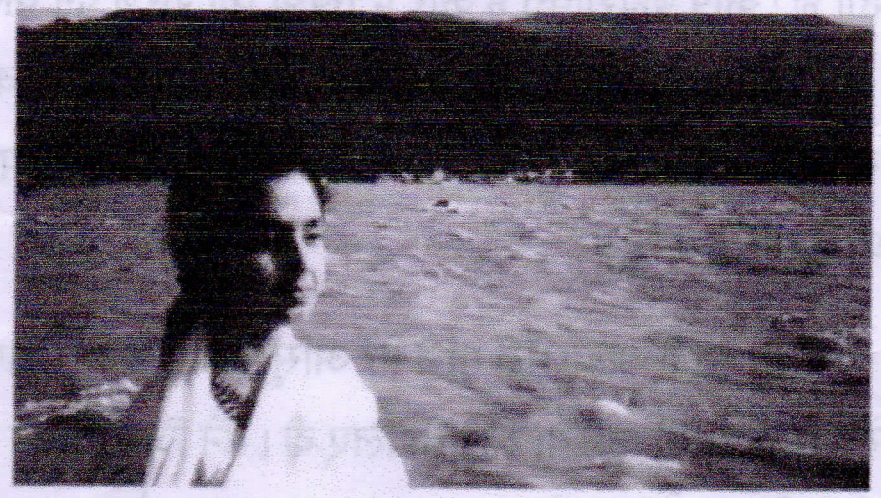

गंगा और मेरी युवा अवस्था



देखा तो मुझे लगा मेरी मां के कमल-नयन प्रेम से भरे हुए हैं। उसके पवित्र जल ने मुझे आप्लावित कर उसकी गोद में समाविष्ट कर दिया और मैं गंगा मैया की तरंगों की स्वर लहरियों में झूलने लगी।

मैंने गंगा मां से प्रार्थना की आप अपने पास आने वाले संतों और भक्तों के लिए संपूर्ण ज्ञान का स्रोत और मुक्तिदाता हो। आप अपने श्रद्धालुओं द्वारा पूजित होकर अपने पवित्र जल से उन्हे कर देती हो! आप ब्रह्मशक्ति हैं और दु:खियों को शरण देने .....

मैंने गंगा मां से प्रार्थना की आप अपने पास आने वाले संतों और भक्तों के लिए संपूर्ण ज्ञान का स्रोत और मुक्तिदाता हो। आप अपने श्रद्धालुओं द्वारा पूजित होकर अपने पवित्र जल से उन्हें पवित्र कर देती हो! आप ब्रह्मशक्ति हैं और दु:खियों को शरण देने वाली हैं। मैं अपने आपको, आपको भेंट करती हूँ, मेरी मां मुझे आशीर्वाद दो मैं सदैव आपके पास रहूं और कभी भी अपने जीवन में आपके सानिध्य से वंचित न रहूं।

एकदम इतनी जल्दी मेरी मां ने मेरे आंसू पोछ दिये और अपने किनारे मुझे छोटी सी कुटिया रहने के लिए दी। मैंने जिस जीवन के स्वप्न देखे थे, उस जीवन के साथ रहना प्रारंभ कर, मैं सदा अपने जीवन के साथ जुड़ गयी। अब मेरा संबंध प्राकृतिक वनों, नदियों, झरनों, पहाड़ों की चोटियों, हिम शिखरों और सदा उपजाऊ गंगा के मैदानों से हो गया था। अब मैं एक नवीन अस्तित्व की धुन को अनुभव करने लगी।

मैंने अपने जीवन का पूर्णत: आनन्द लेना प्रारंभ कर दिया। उस उबड़-खाबड़ भूमि, बदलते मौसम एवं पर्यावरण में, मैं अपने संघर्ष को भूल गयी क्योंकि अब मैं भयावह बाढ़, अकाल, भूस्खलन और भीषण-शीत के साथ रह रही थी।

परिस्थिति, जन्म और मृत्यु के बंधनों से मुक्त होकर, वह अपने भौतिक जगत से मुक्ति की ओर आगे बढ़ते हुए अनंत प्रकाश स्वरूपी आत्मा में उतरकर जीवन जीने लगता है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि प्राचीन परंपरा में इस तीर्थयात्रा के क्रम में यह कहा गया है कि यात्रा को 'यमुनोत्री' से प्रारंभ कर 'बद्रीनाथ' पर पूर्ण करनी चाहिये। लाखों जिज्ञासुओं, सन्तों, योगियों और तीर्थयात्रियों ने अपनी आत्मचेतना को जगाने के लिए यह तीर्थयात्रा की है और गंगा के किनारे अपना तपस्या पूर्ण जीवन व्यतीत किया।

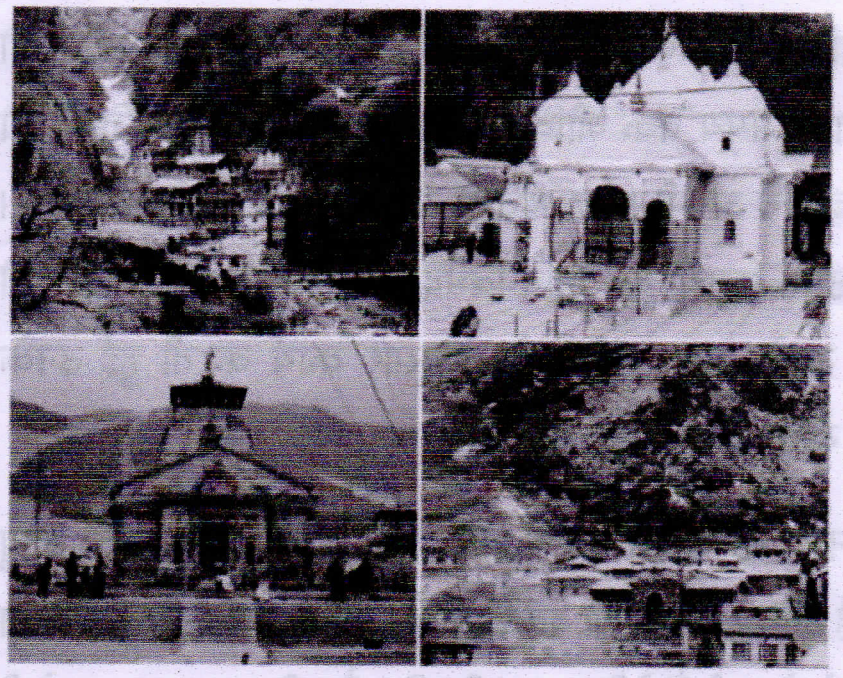

चार धाम यात्रा
यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ

'ग्रामदेवता', ग्राम और उसके प्रत्येक उपादान जो ग्राम में हैं, उसके पर्याय माने गये हैं। घर के निर्माण में निर्माण सामग्री के साथ-साथ जो भावना निवास करती है और घर की निर्माण सामग्री उन भावों का संगठित स्वरूप है। समस्त ग्रामवासी ठीक उसी प्रकार की



भौतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक आधारों का एक उत्कृष्ट योग है।

हर घर, गली, दुकान, पेड़, झाड़ियां, कुंए, लोगों की भीड़, पशु और जीव-जन्तु जो वहां रहते हैं और वहीं मर भी जाते हैं। उनकी गतिविधियाँ, उनके विचार और भाव जो भी वहां होते हैं वे उस एक महान् भाव के ही अंग होते हैं, जिन्हें 'ग्राम देवता' कहा जाता है, जो उस गांव के देवता होते हैं। यह ग्रामदेवता और यह गाँव एक-दूसरे से अविभाज्य हैं।

भारत देश में प्राचीन काल में कस्बों और शहरों का गांवों में विभाजन होता था और हर गांव के अपने ग्रामदेवता होते थे। जैसे कि नेताला गांव के ग्राम देवता 'वासुकी नागदेवता' हैं उनकी ग्राम समुदाय के मुखिया की भांति पूजा जब से यह समुदाय है तभी से होती आ रही है। जबकि सभी गांवों के अपने नाग देवता हैं, ऐसे ग्रामों के समूह के सभी देवता कण्डार देवता से जुडे हुए है जो महान् देवता हैं जिनकी पूजा उत्तरकाशी में जब से यहां लोग निवास कर रहे हैं तभी से हो रही है। यहां देवता की उपस्थिति और देवताओं के प्रति लोगों का विश्वास है कि इन्हीं से इस समुदाय का विकास हुआ है

यह ग्राम देवता, देवी भी हो सकती है जो भूमि, उर्व

यह ग्राम देवता, देवी भी हो सकता है जो भूमि, उर्वरता, स्वास्थ्य और सुरक्षा प्रदान करती है। उनके नाम 'मरियम्मा', 'मातृका' और 'अम्मन्'आदि रहे हैं। जिनकी मां दुर्गा जैसी ही मान्यता है। सप्त मातृकाएं इस पूरे क्षेत्र के कई नगरों की रक्षा करती



रही है। प्रत्येक देवी, देवी मां के ही विशिष्ट स्वरूप में होती थी जिनकी आवश्यकता अनुसार पूजा की जाती थी।

ग्राम देवता पुरुष भी हो सकते थे जो शक्ति, सुरक्षा और बहादुरी के साथ जुडे.रहे। उनके नाम 'हरिमहाराज', 'समेश्वर', 'कंडार देवता' और इस प्रकार के अनेक क्षेत्रीय नामों को धारण किये हुए रहे। जो भगवान कार्तिकेय और भगवान शिव की महाशक्ति से जुडे.रहे, उसी को प्रकट करते रहे।

प्राय: इन ग्राम देवताओं के पूजा स्थल कोई देवालय या वृक्ष के नीचे का स्थान् कोई पहाड़, कोई चट्टान, किसी नदी की धारा, कुण्ड, वृक्ष या वृक्षों के समूह रहे हैं। इन देवताओं के स्थल गांव के केन्द्र में, घरों से बहुत दूर खेतों में, ऊंचे स्थान पर या वनों में भी रहे हैं।

ये ग्राम देवता वृक्षों की शाखाओं, चट्टान या नदी के रूप में भी रहे है। ये पूजास्थल हजारों वर्षों से अपने में से ऊर्जा का प्रसार करते रहे हैं और उनकी पूजा अनेक कल्पों से लोग अपनी श्रद्धा, अपने समर्पण एवं अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा करते आए हैं।

यहां पुजारी की परंपरा वंशानुगत रही है जिसमें चाहे ए एक व्यक्ति हो या समूह हो, इन्हीं के द्वारा गांव के मंदिरों की पू पीढियों से की जाती रही है।

'पुराण' दैवीय इतिहास और व्यवहार को प्रकट करते हैं। इन देवताओं मे प्रेम और घृणा, करुणा और निर्दयता, संरक्षण एवं विनाश आदि के भाव दिखाई देते हैं। जब ये भाव देवताओं के व्यवहार में आते दिखाई देते हैं तो मनुष्य के मनोभावों में भी देखा जा सकता है। मनुष्य को अपने नकारात्मक विचारों को मान्यता देने के लिए देवताओं के दिव्य व्यवहार की आवश्यकता है।

भय, लज्जा, आक्रामकता, पीड़ा, अपराध, क्रोध, ईर्ष्या, दोष, द्वेष, अनैतिक आचरण आदि ये सभी नकारात्मक भाव वर्जनीय माने गये हैं। इन नकारात्मक भावों को स्वीकार नहीं करने से नस्लवाद, शत्रुता, युद्ध आदि उत्पन्न होते हैं।आदर्श मानव समुदाय के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने नकारात्मक भावों को



स्वीकार करे। इनको स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि हम इनको प्रकट करें। परंतु इसका अर्थ यह है कि हम इन नकारात्मक भाव को निष्क्रिय करें। मनुष्य को घृणा, क्रोध आदि का अनुभव करने की अनुमति देनी चाहिए क्योंकि यह सहज है। परंतु उस मनुष्य को अपने व्यवहार में मर्यादाओं के अनुरूप रहना चाहिये।

यदि कोई वैचारिक दर्शन नकारात्मक भावों के अनुभवों को निरस्त करता है, वह मनुष्य के हृदय को निर्बल बनाने के समान है। कोई भी बालक ईर्ष्या, शोक और क्रोध के भावों का अनुभव किये बिना बड़ा नहीं हो सकता है। इसलिए यदि कोई वैचारिक दर्शन यह कहता है कि किसी को भी इन भावों को नहीं अनुभव करना चाहि और यदि आप ईर्ष्यालु हैं तो यह पाप है जिसकी सजा आपको मर के बाद में मिलेगी। यह कहने से हमारा संपूर्ण जीवन अपराध और

'विष' इस प्रकृति की नकारात्मक शक्ति है जिसे सर्प धारण करते हैं। वे इस शक्ति का आवश्यकता होने पर ही प्रयोग करते हैं। नागों को काल का स्वरूप भी कहा जाता है। लम्बे समय तक जीवित रहने के कारण 'दीर्घजीवी' भी कहा जाता है। इस प्रकृति में दीर्घ जीवियों के रूप में कौए, हाथी, गिद्ध, उल्लू और लोमड़ी हैं जो बहुत लम्बे समय तक जीवित रहते हैं। अपनी सूक्ष्म वृत्तियों को जागृत कर वे अपनी सहज गति से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यद्यपि उनमें मनुष्यों की भांति विभेदात्मक शक्ति नहीं है फिर भी प्रकृति उनके सूक्ष्म संवेदों के अनुसार कार्य करती हुई उनके माध्यम से काल को प्रकट करती है।

नागों के जीवन की यह विशेषता है कि जैसे उनकी आयु बढ़ती है उनकी शक्ति भी बढ़ जाती है। उनका शरीर सिकुड़ जाता है, वे मोटे हो जाते हैं लेकिन उनकी गति और तीव्रता प्राप्त कर लेती है। नाग की पूंछ जो कि एक एंटीना की तरह होती है उनकी पूंछ को कट जाने पर पूरा शरीर ही एंटीना की तरह हो जाता है। वे आकाश में उड़ सकते हैं और अपना रूप भी परिवर्तित कर सकते हैं।

यह माना जाता है कि नाग अपनी इच्छा के बल पर जो स्वरूप धारण करना चाहते हैं वो स्वरूप धारण कर सकते हैं। इसलिए उनको सदैव रहस्यमय जीव माना जाता है। उदाहरत: तक्षक नाग रुप

'विष' इस प्रकृति की नकारात्मक शक्ति है जिसे सर्प धारण करते हैं। वे इस शक्ति का आवश्यकता होने पर ही प्रयोग करते हैं। नागों को काल का स्वरूप भी कहा जाता है। लम्बे समय तक जीवित रहने के कारण 'दीर्घजीवी' भी कहा जाता है। इस प्रकृति में दीर्घ जीवियों के रूप में कौए, हाथी, गिद्ध, उल्लू और लोमड़ी हैं जो बहुत लम्बे समय तक जीवित रहते हैं। अपनी सूक्ष्म वृत्तियों को जागृत कर वे अपनी सहज गति से अपना जीवन व्यतीत करते हैं। यद्यपि उनमें मनुष्यों की भांति विभेदात्मक शक्ति नहीं है फिर भी प्रकृति उनके सूक्ष्म संवेदों के अनुसार कार्य करती हुई उनके माध्यम से काल को प्रकट करती है।

नागों के जीवन की यह विशेषता है कि जैसे उनकी आयु बढ़ती है उनकी शक्ति भी बढ़ जाती है। उनका शरीर सिकुड़ जाता है, वे मोटे हो जाते हैं लेकिन उनकी गति और तीव्रता प्राप्त कर लेती है। नाग की पूंछ जो कि एक एंटीना की तरह होती है उनकी पूंछ को कट जाने पर पूरा शरीर ही एंटीना की तरह हो जाता है। वे आकाश में उड़ सकते हैं और अपना रूप भी परिवर्तित कर सकते हैं।

यह माना जाता है कि नाग अपनी इच्छा के बल पर जो स्वरूप धारण करना चाहते हैं वो स्वरूप धारण कर सकते हैं। इसलिए उनको सदैव रहस्यमय जीव माना जाता है। उदाहरत: तक्षक नाग रुप

किसी भी व्यक्ति की प्रकृति को पूर्ण संतुलित करने का अभिप्राय उस व्यक्ति के जीवनलय को परिवर्तित करने से रहा है। विनयशीलता, सद्भाव की विशेषताएं जो मनुष्यों के नैसर्गिक गुण रहे ये गुण इन यात्रियों मे सहज भाव में उतर जाते है। इसका अर्थ यह हुआ कि जैसे विश्वरूप चैतन्य ने एक व्यक्ति की काया, बुद्धि, अनुभव को पवित्र किया है और जो बाधाओं से अपनी आध्यात्मिक यात्रा में मुक्ति पायी है।

जब कोई व्यक्ति इस पवित्र भूमि की यात्रा करते हुए केदारनाथ पहुंचता है तो उसके ब्रह्म से बहुत गहरे से संबंध विकसित हो जाते हैं और वह ईश्वर के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप के एकात्म भाव की लीला का अनुभव करता है। इस जगत की लीला के प्रति वह व्यक्ति जागृत हो जाता है। 'बद्रिनाथ' धाम जिसे अन्तिम लोक कहा गया है वहां पहुंचने पर व्यक्ति अपनी भौतिक अस्मिता, काल एवं

सूर्य वास्तव में अपने प्रकट स्वरूप में ईश्वर ही हैं। इनकी इन्हीं विशेषताओं को अलंकारिक रूप में अभिव्यक्त करते हुए कहा जा सकता है कि सूर्यदेव ईश्वर के प्रतीक हैं। इस प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों में सूर्य ही हैं जो अपने आप में परिपूर्ण और दाता है।

सूर्य प्रकाश रूप में व्याप्त रहते हैं। वे अपने दैवीय प्रकाश से समस्त पदार्थों के संज्ञान का अनुभव प्रदान करते हैं। इनके प्रकाश के अभाव व अंधकार में जो पदार्थ इस सृष्टि में हैं वे भी दिखाई नहीं देते। सूर्य जगत् को ही प्रकाशित नहीं करते बल्कि स्वयं प्रकाशित होते हुए प्रकट भी होते हैं।

सूर्य स्वयं ही पवित्र नहीं बल्कि जो भी सूर्य के संसर्ग में आता है उसे भी वह पवित्र कर देते हैं। वे पवित्र इसलिए हैं क्योंकि उनमें कलुषता का लोप हो जाता है। जब सूर्य अपने प्रकाश से संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं तो वे उन समस्त उपादानों और उनकी क्रियाओं से असम्पृक्त रहते हैं। वैदिक भाषा में वह- एकः-, सर्वगतः- सर्व व्याप्त, शुद्ध-पवित्र, अलेपकः- दोषों से रहित, सर्व प्रकाशक सभी को प्रकाशित करने वाले, अकर्त्ता-अभोक्ता, असंगः- असम्पृक्त हैं। वे आत्मा से अभिन्न भी नहीं, आत्मबोध से रहित नहीं, और ईश्वर से भी पृथक न होकर सभी के स्रोत हैं।

जब मैंने रहने के लिए स्थान खोजा तो मुझे मेरी सखी गंगा का स्मरण हो आया जिससे मैं सदैव सृजन हेतु प्रेरित होती रही, मैं उसके पास लौटी पर अब यह प्रवास सब साजो-सामान के साथ तथा दीर्घकालीन था।



मैं माँ गंगा से मिलने के लिए अति उत्साहित थी। मैं अपने उस क्रीड़ांगन में गयी लेकिन मैं चकित रह गयी मेरी सखी अब पूर्ण विकसित (सुंदरी) हो गयी थी। माँ देवी गंगा की उल्लसित अवस्थिति ने मुझ पर प्रसन्न होकर अपने किनारे बैठने के लिए आमंत्रित किया, जैसे ही उसके तट पर बैठी मैंने उसकी गति को बहुत ध्यान से देखा और उसके रूप सौंदर्य को देखकर में चकित रह गयी। उसके पवित्र जल के प्रवाह में एक लय था जिसने मेरे मन-मस्तिष्क को शांति प्रदान की और उसने मुझे अपने आप में लय कर दिया। मैंने देखा उसका पवित्र एवं सुकोमल स्वरूप नीली जल राशि से आवृत था।

जैसे दिन बीतता वह सुनहरे आवरण में परिवर्तित हो जाती थी तो पूर्णिमा की रात्रि में वह श्वेत आभा से अलंकृत होकर प्रकट हो जाती थी। सूर्यास्त के समय वह लाल नारंगी रंग से लिपटी र[illegible] और कई बार अनगिनत रंगों से आवृत हो जाती थी।

वास्तव में इस रूप में वह हिमालय की माता रानी (रानी माँ) थी जो शाही आवरणों में भिन्न-भिन्न आभूषणों से विभूषित रहकर

और कई बार अनगिनत रंगों से आवृत हो जाती थी।

वास्तव में इस रूप में वह हिमालय की माता रानी (रानी माँ) थी जो शाही आवरणों में भिन्न-भिन्न आभूषणों से विभूषित रहकर अप्रतिम सौदर्य को धारण किये रहती थी। सूर्योदय के समय चमकती हुई सुनहरी आभा जो मध्याह्न होते-होते मोतियों और हीरों से अलंकृत हो जाती थी और जब अँधेरा हो जाता तो चन्द्रमा की किरणों को परावर्तित करती वह रजतमयी आभा के साथ ग्रथित हो जाती थी।



माँ गंगा अपने इस रूप में मुझे इस पृथ्वी पर स्थित रहने वाली सबसे सुंदर और मन मोहित कर देने वाली देवी के रूप में दिखायी देती थी। मुझे माँ गंगा के सदा साथ रहने वाले पहाड़ों और वनों से ईर्ष्या होती थी। अनेक वृक्ष जो गंगा को सूर्य के प्रकाश से बचाते थे और उन्हीं की छांव में ही अनेक पशु उसके पास आकर अपनी प्यास बुझाते थे। गंगा के किनारे बैठ कर मुझे उन पक्षियों से भी स्पर्द्धा होती थी जो उसके किनारों व वृक्षों पर आकर बैठकर पूरे दिन चहचहाते हुए उससे वार्तालाप करते थे। मैं स्पष्टत: जान गयी थी मेरी पुरानी सखी के कई मित्र बन गये थे जो अब एक दूसरे से बार-बार आकर मिलते रहते थे।

मेरी शास्त्रीय शिक्षा और ज्ञान होने के बाद भी मुझे यह आघात लगा कि अभी तक मेरे मन में मृत्यु के प्रति भय बना हुआ था। मेरी चेतना में मृत्यु का भय व्याप्त हो गया और यह सत्य था जिसे मैं स्वीकार नहीं कर पायी, वास्तव में तो मृत्यु से किसी भय की आवश्यकता नहीं क्योंकि इसके पश्चात् पुन: जीवन मिलेगा। मैं यह जानती थी कि मृत्यु भौतिकीय स्तर पर कोशिकीय अणुओं की पुन:संरचना से अधिक नहीं है, जो एक विशिष्ट शरीरी से अशरीरी अवस्था के बीच का संक्रमण काल ही है, जब तक कि यह नवीन शरीर को धारण नहीं कर लेता है। जीवन तो सदैव रहा है, जो विभिन्न कालों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है।



अत: मृत्यु के लिए शोक और निराशा की आवश्यकता नहीं लेकिन फिर भी इसने मुझे जकड़ लिया था। मैं अपने हृदय के अन्त:स्थल से मृत्यु के सत्य से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पायी और अनन्त अनादिकाल के स्वत्व से छुटकारा नहीं पा सकी। मानो मैंने यह मान लिया था कि इस जगत् में भौतिक-वास्तविकता ही वास्तविकता या निश्चित है और वो वास्तविकता नहीं है जिसकी मेरे गुरु ने मुझे शिक्षा दी थी या मैं जिसे स्वयं वर्षों तक दूसरे लोगों को बताती रही।

मुझे क्या हो गया था? मेरा शास्त्रीय ज्ञान और व्यक्तिगत

मुझे क्या हो गया था? मेरा शास्त्रीय ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभव की वास्तविकता का मानो एक दूसरे से आमना-सामना हो गया था। मैं जिस अनादिकाल के सत्य को जानती थी और अब मैं जिस निश्चित कालावधि के सत्य का अनुभव कर रही थी वे एक दूसरे से ठीक विपरीत थे। मेरी बुद्धि और हृदय का एक दूसरे से संतुलन नहीं हो रहा था। मैं अपने ज्ञान और अनुभव के संघर्ष के बीच में टूट गयी थी।

मेरी अन्त:चेतना का संघर्ष, एक सार्वजनिक जीवन की भूमिका और एक निजी मौन रुदन की गहरी वेदना के बीच निरंतर चल रहा था। मैं दूसरों के लिए उत्साही, स्नेहिल बनी हुई थी लेकिन मन में असुरक्षा के भय, दु:ख, रोग और अन्य मानवीय दुर्बलताओं से संघर्ष कर रही थी।

मैं सोच में पड़ गई थी कि क्या जगत् का मिथ्या स्वरूप क्या पदार्थों के लिए ही है? क्या शास्त्रों ने देहेन्द्रिय मन बुद्धि संघात को भी

मिथ्यात्व नहीं माना है? आगे इसका मंथन करने पर मैं समझी कि अवश्य ही उन्होंने देहेंद्रीय मन बुद्धि को भी मिथ्या माना है। फिर भी दशकों बाद मेरा अपना अनुभव क्या रहा? ऐसा क्यों हुआ कि मेरी दुविधाओं और भावनात्मक जीवन की तरंगों को मिथ्या रूप में नहीं देख सकी।

इन भावनात्मक तरंगों को असत्य मानकर मन से विचारों को मिथ्या समझना, यह कोई मजाक नहीं था! अपने छलात्मक मन पर हंसना जबकि वह मन अपनी कमजोरीयो को न्यायोचित सिद्ध कर रहा हो वह नामुमकिन था यह इसलिए था क्योंकि मैं अपनी अंतरात्मा को एक दिव्य पवित्र आत्मा मान रही थी।

मेरा संघर्ष, मेरे पूर्ण जीवन की भांति मेरी त्रुटियों को मानने, स्वीकार करने या उनको साथ लेकर चलने से नहीं था। यह संघर्ष तो अपनी आधार-भूमि से ही हिल चुका था और इसी पर मैंने अपने आध्यात्मिक जीवन का निर्माण किया। मैंने अनुभव किया कि जैसी मैंने अपने आपको माना था वैसी मैं नहीं हूँ।

मैंने अपने आप से पूछा वह मनोभावों की पूर्णता कहां थी जिसमें मन और हृदय के भावों में एकरुपता हो? आत्मज्ञान का परिचय यह है कि अहंकाररुपी व्यवहारों से परे होकर परमात्मा के साथ स्वयं की पहचान के प्रति जागृति में निरत रहना। लेकिन वर्षों तक एक संन्यासी की तरह रहने के बाद भी मुझे लगा मानो मेरा - आध्यात्म से संबंध समाप्त हो गया हो।

यदि कोई वैचारिक दर्शन नकारात्मक भावों के अनुभवों को निरस्त करता है, वह मनुष्य के हृदय को निर्बल बनाने के समान है। कोई भी बालक ईर्ष्या, शोक और क्रोध के भावों का अनुभव किये बिना बड़ा नहीं हो सकता है। इसलिए यदि कोई वैचारिक दर्शन यह कहता है कि किसी को भी इन भावों को नहीं अनुभव करना चाहिए और यदि आप ईर्ष्यालु हैं तो यह पाप है जिसकी सजा आपको मरने के बाद में मिलेगी। यह कहने से हमारा संपूर्ण जीवन अपराध और संताप की ओर चला जाएगा।

यदि मुझे इन भावों को नकारना और इनका दमन करना होगा तो मैं सही मायने में सच्चा मानव नहीं बन सकता हूँ। उस रूप में एक आदर्श का आवरण ओढ़ना होगा। वे लोग जो अपने जीवन में उच्च नैतिक आदर्शों को धारण करते हैं वे अपने व्यवहार में बहुत कठोर हो जाते हैं, "मैं ही सही हूं।" किसी भी व्यक्ति के इस भाव का यह अभिप्राय होता है कि जगत् सदैव गलत ही होता है। मुझे खुद को सही सिद्ध करना पड़ता है क्योंकि मैं कभी गलत नहीं हो सकता हूं क्योंकि गलत होना तो निर्बलता का द्योतक है।

पुराण, दिव्यता को प्रकट करता है और यह दिव्यता सदैव वर्णनातीत ही रही है। विज्ञान का यह मानना है कि यदि कोई उपादान वर्णनातीत है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता या जिसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है तो उसका अस्तित्व ही नहीं होता है। यद्यपि पुराणों ने जिसका वर्णन किया है वे कालबद्ध हैं फिरभी वे कालातीत होकर प्रकाशमान हैं। क्या कालातीत होने पर उसे आंकड़ों में देखा, समझा या प्रकट किया जा सकता है? यदि पौराणिक विचार, प्रकट रूप से आंकड़ों में उपलब्ध नहीं होते हैं, यदि वे इतिहास के काल की परिधि में नहीं आते हैं, तो विज्ञान उस पौराणिक सामग्री को अंधविश्वास मान लेता है और यह निर्णय देता है कि बौद्धिक जगत में इन अंधविश्वासों का कोई स्थान नहीं है।



इस प्रकार विज्ञान ने पुराणों के महत्त्व को भिन्न-भिन्न प्रकार से कई दर्शनों मे अमान्य किया है। इससे पुराणों ने अपनी पौराणिकता को खो दिया क्योंकि वे विज्ञान की जिज्ञासाओं के सामने पौराणिक मान्यताओं की अस्मिता को सिद्ध नहीं कर पाये।

पुराणों को विज्ञान के समक्ष कुछ भी, क्यों सिद्ध करना चाहिये। विज्ञान को पुराण से क्या मतलब है? विज्ञान तो केवल प्रयोगात्मक तथ्य पर निर्भर रहता है। प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण ज्ञान के दो साधन हैं, जिनकी सहायता से विज्ञान, हम जिस जगत् का अनुभव करते हैं, उसका विभिन्न प्रकार से निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

पौराणिक परंपरा तो वर्णन से परे ही रही है जिसका प्रत्यक्ष

पौराणिक परंपरा तो वर्णन से परे ही रही है जिसका प्रत्यक्ष अनुभव तो नहीं किया जा सकता है लेकिन उसका अभी भी अस्तित्व है। वास्तव में जीवन में कई ऐसे उपादान हैं जिनका अनुभव नहीं किया जा सकता है लेकिन फिर भी उनका अस्तित्व बना हुआ है। केवल उनके अनुभव न किये जाने के आधार पर ही उनके अस्तित्व को नकार नहीं सकते हैं। जैसे कि प्रेम वर्णनातीत है, उसको भौतिक रूप से अनुभव नहीं किया जाता, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रेम का अस्तित्व नहीं है।

पुरातन संस्कृति ने प्रकृति के प्रत्येक सर्जन में दैवीय भाव के अस्तित्व को स्वीकार किया। दैवीय भाव अशरीरी और असीम हैं फिर भी इसी से जगत का आविर्भाव हुआ जिसमें जगत् के समस्त जीव समाये हुए हैं।



जब पौराणिक देवता बोलते, हंसते, खेलते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो उनकी दिव्यता विभिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। इसकी कोई ऐतिहासिक पुष्टता नहीं है, लेकिन पौराणिक दृष्टि से ये वास्तविक हैं। पुराणों का अपना पौराणिक काल है। इन पौराणिक कालों में पौराणिक जीवन रहा है। उस जीवन में विशेष प्रकार का व्यवहार दिखाई देता है। और वह व्यवहार एक दिव्य व्यवहार है। इस दिव्य-व्यवहार में विभिन्न प्रकार के भाव दृष्टिगत होते हैं जिनमें अच्छे-बुरे और अधम भी हैं। वे सभी रहते हैं और इन पुराणों में एक संदेश होता है।

जब पौराणिक देवता बोलते, हंसते, खेलते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो उनकी दिव्यता विभिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। इसकी कोई ऐतिहासिक पुष्टता नहीं है, लेकिन पौराणिक दृष्टि से ये वास्तविक हैं। पुराणों का अपना पौराणिक काल है। इन पौराणिक कालों में पौराणिक जीवन रहा है। उस जीवन में विशेष प्रकार का व्यवहार दिखाई देता है। और वह व्यवहार एक दिव्य व्यवहार है। इस दिव्य-व्यवहार में विभिन्न प्रकार के भाव दृष्टिगत होते हैं जिनमें अच्छे-बुरे और अधम भी हैं। वे सभी रहते हैं और इन पुराणों में एक संदेश होता है।

ईश्वर में धर्म और अधर्म के द्वंद्व का अस्तित्व होने के बाद भी परिपूर्ण है। उसी तरह मनुष्य को भी धर्म और अधर्म के द्वंद्व का अनुभव करते हुए, उनको पार कर अपनी परिपूर्णता को स्वीकार करना होगा। वास्तव में मनुष्य अपने हर संघर्ष में अपनी परिपूर्णता को स्वीकार करने में प्रयासरत रहता है।

विज्ञान मनुष्य को अपनी परिपूर्णता को स्वीकार करने के प्रयास में सहायता नहीं दे सकता। इस लालसा की पूर्ति इस दिव्यता में है जो द्वंद्व रूप दृश्य जगत से परे होकर परिपूर्णता में लीन है। संक्षेपत: यह तीव्र लालसा ईश्वर में लीन होती है। यह लीन होना विज्ञान द्वारा संभव नहीं है। क्योंकि मनुष्य का सिर विज्ञान के सामने झुक नहीं सकता। आप विज्ञान की पूजा नहीं कर सकते हो। विज्ञान के लिए विनम्रता नहीं है, विज्ञान हृदय में उस प्रकार का श्रद्धा भाव जागृत नहीं कर सकता है। यह सभंव ही नहीं है।

नागों के पास प्रकृति के पर्यावरण सन्तुलन की प्रबल शक्ति रही है। वे सर्प के रूप में तो जीव हैं। उनकी शारीरिक संरचना, उनकी संवेदनशीलता को प्रकट करती है जो कि उन्हें अन्य जीवों से पृथक सिद्ध करती है। उत्तराखण्ड में कई नागराजा राज्य करते थे। बड़कोट के निकट बोखनाग मंदिर कालिया नागदेवता का स्थान माना जाता है। आज तक भी कुछ शक्तिशाली नागराजा प्राचीन काल से कई स्थानों पर राज्य कर रहे हैं। इनमें 'शेषनाग', 'नागनाथ', 'पुष्करनाग', 'भेकलनाग', 'तक्षकनाग', 'वासुकीनाग', 'लोडियानाग', 'कालियानाग', 'सिंदुरिया नाग', 'महासार नाग' और 'हुण नाग' है।

नागदेवता भागीरथी के गंगा-क्षेत्र में यहाँ के ग्रामीण समाज से अभिन्न रहे हैं। ये देवता ग्रामीण समाज की चेतना को प्रकाशित करते हैं और यह समाज ही ग्राम का निर्माण करता है। इनका एक बहुत विशेष स्थल रहा है, वह 'पालकी' या 'डोली' होती है जो कि लकड़ी और पत्थर की बनी हुई होती है और इसे मंदिर में रखा जाता है।

जब कभी किसी को इनकी महती आवश्यकता अनुभव होती है जैसे कि कोई अस्वस्थ हो या गांवों में भीषण अकाल का भय हो या ऐसी परिस्थिति हो जिसमें व्यक्ति विशेष, परिवार या पूरे गांव को इनकी दैवीय कृपा की महती आवश्यकता हो, तो नागदेवता की शक्ति को किसी अन्य उच्च देवता में स्थानान्तरित कर दी जाती है,

जिससे कि लोगों को राहत प्राप्त हो सके। अन्य अवसरों में नागदेवता उन लोगों की जिनकी कृषि या पारिवारिक समस्या हो, आपसी विवाद हो, निसंतानता या रोग हो, उस समय सहायता करते हैं।

ग्रामीण जीवन के पारिवारिक संबंधों में नागदेवताओं के आदर समान की महती भूमिका होती है। उनकी चेतना और उनका अस्तित्व अपने देवताओं के साथ अन्तर संबन्ध लिए है और वही उनका जीवन है। वास्तव में इनके दैनिक क्रियाकलापों में नागदेवताओं का जुड़ाव इनके जीवन को एक विशेष अधिकार प्रदान करता है। वे अपना जीवन देवताओं से गहरे भाव से जुड़कर व्यतीत करते हैं और उनमें उन देवताओं से विशेष लगाव भी होता है और देवताओं की इनके जीवन पर विशेष व्याप्ति बनी रहती है।

प्राचीन काल में ऋषियों का विभिन्न ग्रहों से संबंध रहा था और वे अपने योगबल से उन ग्रहों की यात्रा करते थे। इन यात्राओं से उन लोकों की जानकारी देते थे। यह कहा जाता था कि नाग, नागलोक में रहते थे। और वे बहुत समृद्ध थे। वे अपने पार्थिव रूप में नागलोक से आते हैं और वापस नागपंचमी को लौट जाते हैं। वे सूक्ष्म जगत् से स्थूल जगत् में भ्रमण कर सकते हैं और वे 'रमणिक द्वीप' जो पृथ्वी और मंगल के बीच है, वहाँ रहते हैं। ऐसा माना जाता है कि नाग अपनी अनंत शक्ति के बल पर अपने स्वरूप को अपनी इच्छा अनुसार परिवर्तित कर सकते हैं। उन्हें जल, वायु और पृथ्वी पर विचरण करने की विशेष योग्यता प्राप्त है।

# अनुक्रम


०१ समर्पण
०२ अनुक्रम
०३ संदेश - स्वामी सिद्धबोधानन्द
०४ श्री धीरचैतन्य मेरे अग्रज का अनुचिंतन
०५ मेरी सखी डीना मरियम का पत्र
०६ आभार
०७ विस्तारित आभार
०८ भटवाड़ी के क्षत्रीय देवता

खण्ड - १

४१ अध्याय - १ अथ: श्री...
६५ अध्याय - २ परिवर्तित पथ ...
७९ अध्याय - ३ अंत:संघर्ष
९१ अध्याय - ४ जीवन के मूल की खोज

खण्ड - २

१०५ अध्याय - ५ मां गंगा के घर वापसी
११५ अध्याय - ६ हिमालय - एक पावन लोक
१२५ अध्याय - ७ देवता संस्कृति
१४५ अध्याय - ८ गंगा घाटी के नागदेवता
१६१ अध्याय - ९ मेरी तीर्थयात्रा का प्रारंभ
१७१ अध्याय - १० मां गंगा द्वारा प्रश्रय
१८९ अध्याय - ११ नागदेवताओं की भूमि में निवास
१९९ अध्याय - १२ उत्तरकाशी की साधु घाटी
२१३ अध्याय - १३ मेरी सतत् तीर्थ यात्रा

# अनुक्रम


२२७ अध्याय - १४ नेताला के महात्माओं के दर्शन
२३७ अध्याय - १५ नागलोक के मार्ग से मेरी यात्रा
१५१ अध्याय - १६ मां गंगा के पार - मेरी तीर्थयात्रा
२७५ अध्याय - १७ भास्कर प्रयाग - सूर्यदेव की तप:स्थली
३०५ अध्याय - १८ पवित्र भूमि गंगनानी का दर्शन
३१९ अध्याय - १९ दैवीय लोक का आकर्षण
३४१ अध्याय - २० यात्रा का नया मोड़
३५९ अध्याय - २१ धाराली की संत माता की सन्निधि में
३७९ अध्याय - २२ गंगोत्री क्षेत्र में प्रवेश
४१३ अध्याय - २३ गोमुख की ओर बढ़ते कदम
४३३ अध्याय - २४ स्वानुभूति की अभिव्यक्ति
४५३ उपसंहार

४५८ प्रार्थना
४५९ माँ गंगा के लिये प्रतिज्ञा
४६३ लेखिका के सेवा प्रकल्प
४८२ शब्द संपदा
४९२ यात्रा का मानचित्र